ISSN: 2456–4397 RNI No.UPBIL/2016/68067 Vol-6* Issue-8* November-2021
Anthology : The Research

निरुक्त में उदाहृत मन्त्र और विद्युत् विज्ञान की संकल्पना

Concept of Mantra and Electrical Science as Exemplified in Nirukta

Paper Submission: 05/11/2021, Date of Acceptance: 16/11/2021, Date of Publication: 17/11//2021

तोषी
असिस्टेंट प्रोफेसर,
संस्कृत विभाग,
राम जयपाल महाविद्यालय,
छपरा, भारत

सारांश / Abstract

सर्वविदित है कि किसी देश की संस्कृति का पूरा ज्ञान हम उसके साहित्य से ही प्राप्त कर सकते है। जिस देश का साहित्य जितना प्रौढ, गंभीर और विस्तृत होता है, उसकी संस्कृति भी उतनी ही उच्च मानी जाती है। संसार में सर्वप्रथम साहित्य हमारे भारत देश में वेदों के रूप में अवतीर्ण हुआ है, जिस पर हम सभी भारतीय जितना गर्व करें, वह कम ही जान पडता है। यह आदि काल से ही सभ्यता और संस्कृति में अद्वितीय रहा है। वर्तमान समय में जो विज्ञान की परिस्थिति है, उसका गौरव हमें प्राचीन ग्रन्थों को प्राप्त होता है। वेद-वेदांगों ने अन्तर्निहित बीज रूपी विज्ञान को भविष्य के लिए कई आयामों में परिलक्षित किया है। उदाहरण स्वरूप - आचार्य यास्क के निरुक्त में वैद्युत विज्ञान की परिपुष्टि मन्त्रों एवं निर्वचनों के माध्यम से होती है जिसे हमने आधुनिकता के रंग में रंगे है।

It is well known that we can get complete knowledge of the culture of a country only from its literature. The more mature, serious and detailed the country's literature is, the more high its culture is considered. The first literature in the world has been incarnated in the form of Vedas in our country of India, on which we all Indians take pride in it, it is rarely known. It has been unique in civilization and culture since time immemorial. The condition of science in the present time, we get the glory of ancient texts. The Vedas and Vedangas have reflected the underlying science of seed in many dimensions for the future. For example, in the Nirukta of Acharya Yask, electrical science is confirmed through mantras and interpretations, which we have painted in the color of modernity. The purpose of this short research paper is to make this present environment as well as to the younger generation, who have started to understand that Vedic Sanskrit-culture is not contemporary, to make them aware of these facts so that the future of India can be more golden.

मुख्य शब्द - वेद, निरुक्त, यास्क, वैज्ञानिक तत्व, विद्युत, अग्नि, जल की धारा, उष्मा, सूर्य, चन्द्रमा, इत्यादि।

Keywords: Veda, Nirukt, Yask, Scientific Element, Electric, Fire, Water Stream, Heat, Sun, Moon etc.

प्रस्तावना

वेद के स्वरूप को जानने में जो उपयोगी शास्त्र है; उन्हे वेदांग के नाम से जाना जाता हैं।अङ्.ग्यन्ते ज्ञायन्ते अभिरिति अङ्.गानि इति।" इन वेदांगो की उत्पति संभवतः उपनिषद् काल में ही हो गई थी। इन वेदांगो के नाम तथा क्रम का वर्णन सर्वप्रथम मुण्डकोपनिषद् (1:15) में मिलता है। इन्हें शिक्षा कल्प, व्याकरण निरुक्त, छन्द तथा ज्योतिष के नाम से जाना जाता हैं। वेद के इन छह वेदांगों में महर्षि यास्क का निरुक्त **"निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते"** कहा गया हैं। आचार्य सायण ने निरुक्त का लक्षण अपने ऋग्वेद भाष्य-भूमिका में देते हुए कहा है - **"अर्थावबोधे निरपेक्षतया पदजातं यत्रोक्तं तन्निरुक्तं"** अर्थात् अर्थज्ञान के लिए स्वतंत्र रूप से जहाँ पदों को कहा गया हैं वह निरुक्त है।

महर्षि यास्क रचित निरुक्त निघण्टु के ऊपर लिखी गई टीका है और निघण्टु वैदिक शब्दकोष हैं। इसमें कुल पाँच अध्याय हैं जिसके प्रथम तीन अध्यायों को नैघण्टुक काण्ड कहते हैं। चतुर्थ अध्याय को नैगमकाण्ड तथा पंचम अध्याय को दैवतकाण्ड के नाम से जाना जाता हैं। इसी निघण्टु में प्रयुक्त वैदिक शब्दों का निर्वचन तथा वैदिक मन्त्रों की व्याख्या यास्क के द्वारा निरुक्ति में की गई है

यास्क मुनि ने अपने निरुक्त के अन्तर्गत आग्रायण, औदुम्बरायण, औपमन्यव, और्णवाभ कात्थक्य, क्रौष्टुकि, गालव, गार्ग्य, तैटीकि, वार्ष्यायणि, शाकपूणि और स्थौलाष्टीवि इत्यादि

द्वादष निरुक्तकारों का उल्लेख किया हैं। सम्प्रति निरुक्त वेदांग का प्रतिनिधि ग्रन्थ यास्क रचित **"निरुक्तं"** हैं।

निरुक्त के प्रथम काण्ड के तीन अध्यायों को नैघण्टुक काण्ड के नाम से जाना जाता हैं जिसमें पर्यायवाचीय शब्द का संग्रह हैं। द्वितीय काण्ड के तीन अध्यायों को नैगमकाण्ड के नाम से जाना जाता हैं जिसमें सभी शब्द स्वतंत्र हैं तथा अनेकार्थक हैं। तृतीय काण्ड के छः अध्यायों को दैवतकाण्ड के नाम से जाना जाता हैं जिसमें देवताओं से सम्बन्धित शब्दों का विवेचन है और जो वैदिक नाम या पद देवताओं की स्तुति से सम्बद्ध है। इसके अतिरिक्त दो अध्याय परिशिष्ट रुप में दियें गयें हैं। इस तरह सम्पूर्ण ग्रन्थ चतुर्दश अध्यायों में विभक्त हैं।

महर्षि यास्क के दैवतकाण्डीय मन्त्रों में जिन वैज्ञानिक तथ्यों का दर्शन होता है वह समसामयिक विज्ञान है। विज्ञान शब्द **"वि"** उपसर्गपूर्वक **"ज्ञा"** घातु से प्रत्यय करने पर निष्पन्न हुआ हैं जिसका अर्थ ज्ञान, बुद्धिमता, प्रज्ञा एवं समक्ष आदि है।1 विज्ञान शब्द में "वि" उपसर्ग विशेष अर्थ का द्योतक हैं। विज्ञान में तर्कसंगतता विश्वसनीयता एवं वैधता होती हैं इसलिए इस विशिष्ट ज्ञान को विज्ञान कहते हैं।

श्रीमद्भगवद् गीता के "ज्ञान ते ऽ हंस विज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः।" गीता के इस अंश पर आचार्य शंकर ने ब्याख्या करते हुए "विज्ञानं सहितम् स्वानुभव सयुक्तं" लिखा है। अथर्ववेद में 'विज्ञान' शब्द का प्रयोग विशिष्ट ज्ञान के लिए हुआ है।[3] वस्त्र जिस प्रकार शरीर को आच्छादित करके उसकी रक्षा करता हैं उसी प्रकार ज्ञान और विज्ञान मानव के रक्षक है तथा उसके सुख के साधन है।[4]

महर्षि यास्क ने निरुक्त के दैवतकाण्ड में जिन ऋग्वैदिक मन्त्रों को उदाहृत किया है तथा तत्सम्बन्धी शब्दों का निर्वचन किया है उससे हमें मन्त्रों में सन्निहित वैज्ञानिक तत्वों का परिज्ञान होता है। महर्षि यास्क ने दैवतकाण्ड के सातवें अध्याय में अग्निदेवता के मध्यमाग्नि स्वरूप की एक ऋचा को उदाहृत किया है।[5] जिसमें यह सुन्दर ऋचा वैज्ञानिक तथ्य को भी प्रकाशित करती है जिसका भाव यह है कि जैसे कल्याणकारी स्त्रियॉं मन से एक ही पति पर अनुरक्त रहती है; वैसे ही जल की धाराएँ प्रदीप्त मध्यमस्थानीय विद्युत् को प्राप्त करती है। इस मन्त्र में हमें जल की धाराओं से विद्युत् के उत्पन्न होने का स्पष्ट संकेत मिलता है। इन जल की धाराओं से विद्युत् के उत्पन्न होने की प्रक्रिया का उल्लेख अथर्ववेद में भी प्राप्त होता है जिसके अनुसार जल का पित्त (उष्मा) अग्नि को माना गया है जिसका अभिप्राय यह है कि जल में अग्नि सदा विद्यमान रहती है। जैसे घर्षण या मंथन से दही -धी, दूध से मक्खन निकाला जाता है वैसे ही मन्थन कर जल से उष्मा या अग्नि का प्रकटीकरण होता है।[6]

इसी तथ्य का आचार्य यास्क के पूर्वोत्तरषट्क में यह स्पष्ट रूप से वर्णन प्राप्त होता है कि सूर्य की किरणें चन्द्रमा को प्रकाश देती है अर्थात् सूर्य से चन्द्रमा प्रकाशित होता हैं।[7] जिसका दैवतकाण्ड में ऋग्वेदीय मन्त्र द्वारा सूर्य तथा चन्द्रमा के इस सम्बन्ध को उदाहृत किया है। जिसके अनुसार चन्द्रमा में अमृत है और वह सूर्य से प्रकाश प्राप्त करता है। सूर्य की जिस किरण से इस चन्द्रमा में प्रकाश आता है सूर्य अपनी उसी किरण द्वारा उसी अमृतत्व से सूर्य अमरणधर्मा बना हुआ है अर्थात् सूर्य और चन्द्रमा दोनों में उपजीव्योपजीवक भाव हैं।[8]

इस महत्वपूर्ण वैज्ञानिक तथ्य के उल्लेख में ऋग्वेद[9] तथा अथर्ववेद[10] के अनुसार चन्द्रमण्डल में सूर्य की गुप्त किरणें पहुँचती है। मन्त्र के अन्तर्गत ''अपीच्य'' शब्द गुप्त या रहस्यमय किरण का बोधक है। यजुर्वेद में इस गुप्त किरण का नाम 'सुषम्ण' नामक सूर्य रश्मि दिया गया है जो चन्द्रमा को प्रकाशित करती है। अतएव चन्द्रमा को गन्धर्व (किरणों का धारक) कहा गया है।[11]

इसके साथ ही आचार्य यास्क ने दैवतकाण्ड के सातवें अध्याय में 'वैश्वानर' शब्द के निर्वचन द्वारा अन्य निरुक्तकारों के मतानुसार तथा ऋग्वेदीय मन्त्र के माध्यम से मध्यम अग्नि विद्युत् को बताते हुए पृथ्वीस्थानीय अग्नि तथा मध्यमस्थानीय अग्नि अर्थात् विद्युत् में अत्यन्त सूक्ष्म तथा वैज्ञानिक भेद को स्पष्ट किया है जिसमें आचार्य यास्क के निर्वचन के अनुसार वैश्वानर[12] सभी मनुष्यों को इस लोक से परलोक पहुँचाता है। इसे सभी मनुष्य प्राप्त करते हैं। सब में विद्यमान रहने वाली यह अग्नि वैश्वानर कहलाती है। आचार्य शाकपूणि के मतानुसार यह वैश्वानर अग्नि लौकिक अर्थात् पृथिवीस्थानीय ही है[13] क्योंकि विद्युत् और सूर्य इन दोनो से ही इस अग्नि का जन्म होता है। इसलिए यह विश्वानर का अपत्य वैश्वानर कहलाता है। इसके स्पष्टीकरण के लिए आचार्य शाकपूणि ने अन्तरिक्ष में विद्युत् और पृथिवी के अग्नि के भेद को बताया गया है जिसमें अन्तरिक्षस्थ जल में चमकने वाला विद्युत् है जो पार्थिव धातु से शांत होने वाला शरीरोपशमन है। परन्तु पृथिवी पर पार्थिव अग्नि से उत्पन्न किया गया विद्युत् शरीर दीप्ति और उदकोपशमन अर्थात् पानी से शन्त हो जाने वाला है।[14]

आज हमारे घरों में जो विद्युत धारा काम करती है वह लोहे और पाकशला के बर्तनों को अत्यन्त गरम करके दीप्त कर देती है और जल में वह शन्त होती है। यह पृथ्वीस्थानीय विद्युत् (अग्नि) जल को धूम बना कर उडा सकती हैं अर्थात् वाष्प बनाती है। पर उसमें स्वयं दीप्ति नहीं होती है। निरूक्त के टीकाकार पं0 भगवद्दत्त के अनुसार प्राचीन काल में आर्य मन्दिरों पर लगाया गया त्रिशूल इस वैद्युत् अग्नि को पकडने का ही साधन था।[15]

आचार्य यास्क ने इसके पश्चात सूर्य से उत्पन्न अग्नि का वर्णन किया है। इस समबन्ध में उदहृत मन्त्र के आशय के अनुसार जब सूर्य उपर की ओर जाता है अर्थात् सूर्य के उत्तरायण होने पर यदि हम कांसा या मणि को साफ करके सूर्य के सामने रखें तो वह उससे निकलने वाले ताप के पास रखा गया गोबर जल जाता है। यदि समीप में रूई भी रखी होगी तो भी वह जल जाएगी। इस तरह सूर्य से निकला ताप ही पार्थिव अग्नि के रूप में परिवर्तित हो जाता है।[16]

अतः आचार्य यास्क ने निर्वचन तथा ऋग्वेद के मन्त्र द्वारा यह स्पष्ट किया है कि वैश्वानर का सूर्य के साथ संगत होता है।[17] यह वाक्य सार्थक प्रतीत होता है। इसी वैश्वानर अग्नि के सम्बन्ध में आचार्य यास्क ने ऋग्वेदीय ऋचा[18] को उदाहृत करके यह स्पष्ट किया है कि वैश्वानर इस पार्थिव अग्नि से भी अन्न की उत्पत्ति होती है। यास्क ने वर्षा कराने का उत्तरदायी अग्नि को ही माना है। इसी अग्नि में हम जो आहुति डालते हैं वह सूर्य को पहुँचती है और आदित्य से वर्षा, वर्षा से अन्न उत्पन्न होता है तथा इस अन्न से प्रजाओं का पोषण होता है। इस संदर्भ में दूसरी ऋचा को उदाहृत किया है जिसका भाव यह है कि सूर्य की किरणें जल को भाप के रूप में अपने आकर्षण से उपर ले जाती है और पुनः इसको वृष्टि के रूप में नीचे लाती है जिससे यह पृथिवी गीली होती है। मनुस्मृति[19] और ब्राह्मण ग्रन्थ[20] में भी उल्लिखित है कि पृथ्वीस्थानीय अग्नि ही विद्युत् स्वरूप को प्रेरित करती है।

अध्ययन का उद्देश्य

इस वर्तमान परिवेश को और साथ ही साथ युवा पीढी को, जो यह समझने लगे है कि वैदिक संस्कृत-संस्कृति समसामयिक नही रही, उन्हे इस तथ्यों से अवगत कराना ही इस लधु शोध-पत्र का ध्येय है ताकि भारत का भविष्य और भी स्वर्णिम हो सके।

निष्कर्ष

इस प्रकार आचार्य यास्क ने निरुक्त के दैवतकाण्ड के उदाहृत मन्त्रों में हमें जिस विज्ञान का दर्शन कराया है वह अंतरिक्ष में स्थित विद्युत् ही है, वही जल में सदैव विद्यमान रहने वाली विद्युत् धारा है तथा वही पृथ्वी पर अग्निस्वरूपा है। इस दृष्टिकोण से यह वैदिक विज्ञान आज भी समसामयिक प्रतीत होता है और साथ ही इस वैश्विक महामारी ने और भी अच्छी तरह से वैदिक साहित्य व संस्कृति के अपरिहार्य महत्ता को विश्वपटल पर अंकित कर डाला है, जिससे हम भारतीय को गर्व हो।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *संस्कृत हिन्दी कोष, वामन शिवराम आप्टे, पृ0 सं0 931*
2. *ज्ञानमं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः। गीता 7.2*
3. *एषामहं समासीनानां वर्चो विज्ञानमा ददे।*
   अस्याः सर्वस्याःसंसदोमामिन्द्रभगिनं कुणु॥ अथर्ववेद - 7.12.3
4. *उषाः पुंश्चली मन्त्रो मागधोविज्ञानं वासोहरुषणीषं।*
   रात्री केशा हरितौ प्रवर्तो कल्मलिर्मणिऽ ॥ अथर्ववेद - 15.2.13
5. *अभी प्रवन्त समनेव योषाः कल्याण्यः स्मयमानासो अग्निम्।*
   घृतस्य घाराः नसन्त ता जुषाणो हर्यति जातवेदाः॥निरुक्त - 7.19ॅऋग्वेद - 4. 58. 8
6. *अग्ने पित्तमपामसि। अथर्ववेद - 18. 3. 5*
7. *समुद्रादूर्मिर्मधुनां उदारदुपांशुना सममृतत्वमानट्।*
8. *घृतस्य नाम अस्यैको रश्मिः चन्द्रमसं प्रति दीप्यते आदित्यीऽस्य दीप्तिर्भवति। निरुक्त - 2. 6*
   गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानामृतस्य नाभिः॥ ऋग्वेद - 9. 58. 1
   टि0 -समुद्रात् उदकं संधातात् उभिः सर्वस्य तेजसः छादकः
   प्रकाशेन मधुमान् उदकवान् उदारात् उदेति अहन्यहनि॥निरुक्त - 7. 18
9. *अत्राह गोरमन्वतः नाम त्वष्टुपीच्यम्।*
   इत्थाचन्द्रमसो गृहे॥ऋग्वेद - 1. 84. 15
10. *अत्राह गोरमन्तनाम त्वष्टरपीच्यम्। इत्था चन्द्रमसो॥अथर्ववेद - 20. 41. 3*
11. *सुषुम्णाः सूर्य रश्मिचन्द्रमा अस्यैको रश्मिचन्द्रमागन्धर्वः।*
    अस्यैको रश्मिः चन्द्रमसं प्रति दीप्यते॥ यजुर्वेद - 18. 40
12. *वैश्वानरः कस्मात् ! विश्वान्नरान्नयति विश्वम एवं*
    नराप्रत्यृतः सर्वाणि भूतानि तस्य वैश्वानरः।निरुक्त - 7. 20

13. अयमेवाऽग्नि वैश्वानर इति शाकपूणिः।
विश्वन्नावित्यप्येते उत्तरे ज्योतिषि॥निरुक्त - 7. 20
14. यत्र वैघुतः शरणमभिहन्ति यावदनुपात्तो भवति।
मध्यमघर्मैव तावद् भवत्युकेन्धनः शरीरोपशमनः॥
उपादियमान एवायं सम्पद्यत उदकोपशमनः शरीरदीप्तिः। निरुक्त - 7. 22
15. निरुक्तम् - पं0 भगवद्दत्त की टीका, पृ0 सं0 424
16. अथादित्यात् उदीचि प्रथमसमावृत्त आदित्ये कंस
वामणिं वा परिमृज्य प्रतिस्वरे यत्र शुष्कगोमयम्
अस्पर्शयन् धारयति तत्प्रदीप्यते। निरुक्त - 7. 23
17. वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवानाममिश्रीः।
इति जातो विश्वमिदं वि चष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण॥ ऋग्वेद - 1. 98. 1
18. समानमेतदुकमुच्चैत्यवचाहमिः।
भूमिं पर्जन्या जिन्वन्ति दिवं जिन्वत्यग्नयः॥ ऋग्वेद - 1.164.51
19. अग्नौ प्रस्ताहुतिः सम्यग् आदित्यमुपतिष्ठते ।
आदित्याज्याते वृष्टिवृष्टेरन्नं ततः प्रजाः॥मनुस्मृति - 3. 76
20. अग्नेवैघूमोजायते, घूमाद्भ्रम् अभ्राद् वृष्टिः।शतपथब्राह्मण - 5. 3. 5. 17 ण्